भाद्र शुक्ल दो, मंगलवार, दिनांक - ०८-०९-१९६४
श्रावकाचार, गाथा - ३६ से ४५, प्रवचन-१६

पद्मनन्दि पंचविंशति का यह छठवाँ अधिकार है। श्रावकाचार अथवा श्रावक के संस्कार कैसे होते हैं, किसे श्रावक कहना? उसका इसमें वर्णन है। छह अधिकार हो गये। षट्कर्म की व्याख्या हो गयी। अब यहाँ जरा दया की बात आचार्य करते हैं। दान का अधिकार अन्तिम पूरा किया। है न? दिन-प्रतिदिन दान करना, ऐसा अधिकार है। एक दिन दान किया और फिर दूसरे दिन नहीं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आत्मा में जहाँ राग ही बिल्कुल नहीं, ऐसी जहाँ आत्मा की दृष्टि निर्लोभपने की हो, निर्लोभ कहो या निर्ग्रन्थ दृष्टि कहो। आत्मा राग-द्वेष की गाँठरहित तत्त्व है। समझ में आया? ऐसे तत्त्व की दृष्टि हो, उसे निर्ग्रन्थ दृष्टि कहो या राग की एकता टलकर अरागी आत्मा का स्वभाव शुद्ध है, ऐसी दृष्टि होने पर उसे लोभ बहुत मन्द पड़ जाता है। समझ में आया? इसलिए उसे षट्कर्म हमेशा होते हैं। देव की सेवा-पूजा देव की, गुरु की सेवा, संयम, तप, दान और स्वाध्याय हमेशा उसे (होता है)।

शास्त्र का स्वाध्याय उसे हमेशा आचरण में ऐसा भाव आये बिना नहीं रहता। षट् प्रकार के दान का व्यवहार की कथन की पद्धति में उसकी भूमिका में ऐसा भाव होता है।

अब दान की बात ३६ गाथा में छह गाथा से पूरी की। ऐसे तो दान अधिकार पूरा-पूरा पहले आता है। बड़ी दान की व्याख्या बहुत (आती है)। उसमें एक अधिकार ऐसा भी लिया है। दान अधिकार में एक गाथा (ली है) कि पूर्व के पुण्य के कारण तुझे कुछ पैसा आदि मिला हो तो जैसे कौवे को जला हुआ अनाज देने पर अकेला नहीं खाता। समझ में आया? कौआ-कौआ होता है न? उस कौवे को जला हुआ अनाज... दाझेलु कहलाता है न? जला हुआ। खुरचन। वह जला हुआ अनाज मिलने पर अकेला नहीं खाता। वह कौ-कौ करके बहुतों को बुलाकर भाग पाड़कर खाता है। शोभालालभाई! है इसमें, हों! इस दान अधिकार में है कहीं। कितने में होगा, क्या खबर पड़े? ४६। दान का है। लो, ४६ बराबर है।

आचार्य कृपण की निन्दा करते हैं। १३१ पृष्ठ। है? इसके पहले है। दान अधिकार।

किं जीवितेन कृपणस्य नरस्य लोके
निर्भोगदानधनबन्धनबद्धमूर्तेः।
तस्माद्वरं बलिभुगुन्नतभूरिवाग्मि-
र्व्याहूतकाककूल एव बलिं स भुङ्क्ते।।४६।।

पहले दान का अधिकार है, सेठी! उसकी ४६ गाथा है। ४६ गाथा दान के अधिकार की। **जिस लोभी पुरुष की मूर्ति, कृपण पुरुष... का इस लोक में जीना सर्वथा व्यर्थ है।** सेठी! ऐसे कंजूसों के इस जगत में सब जीवन व्यर्थ, व्यर्थ है। **क्यों? उस पुरुष अपेक्षा काक ही अच्छा है।** ताराचन्दजी! उस पुरुष की अपेक्षा से कौआ अच्छा है। कौआ। जुगराजजी! यह कौआ होता है न, कौआ? बुलाकर खाता है। पहले ऐसा रिवाज था। आहार-पानी खाकर फिर जो उकडीया—जला हुआ हो, उसे बाहर पत्थर की एक कुण्डी रखते हैं पत्थर की, उसमें डालते हैं, नीचे धूल नहीं होती। और यह कौवा आवे तो कौआ सबको बुलाकर ही खाता है। अकेला नहीं खाता। ऐसा कहते हैं कि तेरी अपेक्षा तो कौआ अच्छा है। आचार्य को ऐसा कड़क कहने से क्या होगा?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : करुणामय है। करुणाबुद्धि से (कहते हैं), भाई! उसमें आता है न?

मक्खी ने तो मधु पिया, न खाया, न दान दिया,
लूटनेवाले ने लूट लिया रे पामर प्राणी।

मक्खी मधु इकट्ठा करती है न? फिर नीचे वह वाघरी (हल्की जाति की स्त्री) आकर धुआँ करती है धुआँ। धुआँ करके सब मधु ले जाती है। देवीलालजी!

मक्खी ने तो मधु पिया, न खाया, न दान दिया,
लूटनेवाले ने लूट लिया रे...

लड़के-बड़के सब लूट जानेवाले हैं, हों! सब भाग पाड़कर। जीते-जी मारे।

यह तो ठीक परन्तु लड़के धुआँ करेंगे। यह तो ठीक। बहुत बोलने का इन्कार किया है इसके लड़के ने। कमलाबहिन ने। नहीं तो बहुत बोले ऐसा है। कहो, समझ में आया?

कहते हैं कि यह धुआँ करके... धूप करे। ऐसा करके फिर सब शहद ले जाए। ऐसा तेरे पूर्व के पुण्य के कारण कुछ कूका (पैसा) मिले हों, कूका अर्थात् पैसा, यह लड़कियाँ कूका खेलती हैं न ऐसे कंकड़ों से, यह पैसे खेले पूरे दिन। दस, पाँच हजार, पचास हजार, लाख, दो लाख, पाँच लाख ऐसे दिये और ऐसे लिये। उसमें तूने खाया भी नहीं और दान भी नहीं दिया। यह भाग पाड़कर लड़के और उत्तराधिकार ले जाएँगे। लूट जाएँगे और मरकर नरक में जाएगा, पशु में जाएगा कृपण बुद्धि में।

कहते हैं कि कृपण बुद्धि की अपेक्षा—उस पुरुष की अपेक्षा कौआ अच्छा है कि जो **ऊँचे-ऊँचे शब्द से दूसरे बहुत से काकों को बुलाकर मिलकर भोजन करते हैं।** शोभालालभाई! ऐसे तुझे पूर्व के पुण्य के (फल में) खुरचन मिली, यह खुरचन है। उकडीया समझे? जला हुआ। इसी प्रकार पूर्व में आत्मा के गुण जले थे, जले थे। गुण जले तब पुण्य भाव होता है। उस पुण्यभाव के प्रमाण में तुझे यह बाह्य लक्ष्मी आदि मिली। वह तो आनेवाली थी, उसमें वह निमित्त। उसमें यदि तूने कुछ दान में, धर्म प्रभावना में भोग में से निकालकर, उसमें जो कुछ नहीं किया तो कहते हैं कि कौवे में से भी तू गया बीता है। समझ में आया? वहाँ उसमें यह अधिकार है।

आचार्य ने अन्तिम बात तो इतनी अधिक ली है कि यह मेरी बात, उल्लू को जैसे प्रकाश नहीं रुचता, उसी प्रकार इस लोभ को घटाने की बात कृपण को नहीं सुहाती। यह कृपण इसमें से निकालेगा कुछ दूसरा। समझ में आया? या तो यह मेरे से पैसा घटाने के लिये यह कहते हैं, यह अमुक करने के लिये कहते हैं, ऐसा करके उपदेशक का भी दोष निकालेगा। ऐसा है अन्दर में। समझ में आया? वह उपदेशक का दोष निकालेगा कि यह सब करते हैं, वह मुझसे पैसा लेने को करते हैं। कृपण और कंजूस की जिसकी वृत्ति है, जिसे भगवान आत्मा राग के विकल्परहित निर्लोभ पिण्ड प्रभु आत्मा, ऐसी जिसे दृष्टि हुई, उसको ऐसी कृपणता नहीं हो सकती। समझ में आया?

यह कहते हैं कि जैसे उल्लू को रात्रि का अन्धकार ठीक पड़ता है परन्तु प्रकाश

ठीक नहीं पड़ता। उसी प्रकार राग को मन्द करने का हमारा उपदेश, आचार्य स्वय कहते हैं कि उल्लू जैसे अन्धकार में रहनेवाले कृपणों को हमारा दान का, लोभ घटानेरूपी प्रकाश का दान का भाग उसे नहीं रुचता। शोभालालभाई! और जैसे पत्थर की कली हो फूल की और भँवरा गुंजार करता हुआ वहाँ आवे, वह पत्थर की कली नहीं खिलती। समझ में आया? जो कोई वनस्पति की कली होगी भँवरा पराग लेने आने पर वह एकदम खिल जाएगी। इसी प्रकार जिसका लोभ घटा है और लोभ को घटाने का जिसका भाव है, ऐसे को हमारे उपदेश का गुंजारण निमित्तपने होगा। बाकी उपदेश का गुंजारण पत्थर की कली को नहीं खिला दे। ताराचन्दजी! है? समझ में आया?

आचार्य जंगल में बसनेवाले मुनि थे, करुणाबुद्धि से कहते हैं। कल कहा था। लोभरूपी गहरी भेखड़ के कुएँ में भरे हुए को लोभ घटाने के लिये कुछ कोमलता करने के लिये यह दान का उपदेश हम करते हैं। ऐसा पहले कहा गया था। इन्हें कहीं उससे कुछ लेना नहीं है। परन्तु अरे... आत्मा! तुझे इस लोभ को मन्द करने का भी भाव न हो तो लोभ की इच्छारहित तत्त्व निर्लोभ आत्मा भगवान है, ऐसे (तत्त्व की) वीतराग दृष्टि तुझे हो, वीतरागभाव सुहावे और ऐसा कहे कि यह राग की मन्दता नहीं सुहाती... समझ में आया? वह पूर्ण विपरीत दृष्टि का दृढ़ करनेवाला है। सेठी! वीतरागभाव सुहाता है। वीतरागभाव सुहाता है अर्थात्? आत्मा राग और विकल्प और लोभ मन्द-तीव्र रहित है। अरे! उसकी जिसे रुचि हो, उसे मन्द राग की और तीव्र राग टालने के लिये लोभ की मन्दता का दान-दया का भाव हुए बिना नहीं रहता। ऐसा उस भूमिका का भाग है। इसलिए यहाँ कहते हैं कि हमारी दान के उपदेश की व्याख्या वे कृपण जो पत्थर की कली जैसे (होंगे) वे नहीं खिलेंगे। ताराचन्दभाई!

मुमुक्षु : पत्थर की कली...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं खिलेगी पत्थर की संगमरमर की या लकड़ी की। हरितकाय वनस्पति होगी तो वह (भँवरा) गुंजारण करे तो खिलेगी।

मुमुक्षु : कोमल होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोमल होगा। बस। जिसका हृदय कोमल है, उसे यह उपदेश खिलेगा। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इस दुनिया का अनुभव है ही न। नया क्या अनुभव करना था? मुनि तो जंगल में रहते थे। दुनिया को-नाचनेवाले को देखते हैं। स्वयं नाचते नहीं इसलिए। समझ में आया? दुनिया किस प्रकार नाच रही है और किस प्रकार रही है, वह सब इस प्रकार नाच रहे हुए को ज्ञानी जानते हैं। जंगल में रहे हुए।

अब यहाँ ३७ गाथा में आचार्य ने जरा अहिंसा की व्याख्या करके तेरा दया का भाव होना चाहिए। दयांगी—दया का एक अंग है। व्रतों में दया का भाव, वह मुख्य है। यह व्यवहार दया की बात चलती है, हों! निश्चय दया तो आत्मा में ज्ञानस्वरूपी प्रभु वीतरागी अखण्डानन्द आत्मा की दृष्टि होना, वह अहिंसक दृष्टि और वह सम्यक्दृष्टि है। वह अहिंसक दृष्टि है। एक विकल्प भी राग और दया-दान का विकल्प मुझे लाभ करे या वह मेरा स्वरूप है, यह मान्यता हिंसक दृष्टि अर्थात् मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? ऐसी अहिंसा दृष्टि अपना स्वभाव ज्ञान, आनन्द निर्विकार, ऐसे स्वभाव की अन्तर्मुख अत्यन्त स्वभाव के शरण में जाने से जो शुद्ध दृष्टि प्रगट होती है, उसे अहिंसा दृष्टि, सम्यक् दृष्टि, सत्य दृष्टि, धर्म दृष्टि कहा जाता है। उसमें तो पुण्य और पाप का विकल्प भी उसके साथ में, संग में नहीं होता। समझ में आया? ऐसी दृष्टि यथावन्त जीव को भी श्रावक के गुणस्थान के योग्य जब शान्ति अन्दर में प्रगट हुई हो, उसे ऐसे कषाय की मन्दता के—शुभ के भाव हुए बिना नहीं रहते। उसकी भूमिका में यदि ऐसे (भाव) न होवे तो उस वस्तु की स्थिरता या दृष्टि की उसे खबर नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें? ३७ (गाथा)

गाथा ३७

येषां जिनोपदेशेन कारुण्यामृतपूरिते।
चित्ते जीवदया नास्ति तेषां धर्मः कुतो भवेत्।।३७।।

अर्थ : जिनेन्द्र भगवान के उपदेश से करुणा से पूरित भी जिन मनुष्यों के चित्तों में दया नहीं है, उन मनुष्यों के धर्म कदापि नहीं हो सकता॥३७॥

गाथा - ३७ पर प्रवचन

येषां जिनोपदेशेन कारुण्यामृतपूरिते।
चित्ते जीवदया नास्ति तेषां धर्मः कुतो भवेत्।।३७।।

दया का अर्थ, पर की (दया) पाल सकता है या मार (सकता है), यह बात नहीं है। यहाँ करुणाबुद्धि राग की मन्दता के पुण्य परिणाम की बात चलती है। समझ में आया? दूसरे को मैं सुखी कर सकूँ या दुःखी कर सकूँ, यह आत्मा में ताकत नहीं है। यह तो पहले से दृष्टि हुई होती ही है। उसमें उसे दूसरे प्राणी एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीव है। जिनोपदेश है न? वीतराग के उपदेश में त्रिलोकनाथ वीतराग चैतन्य प्रभु के उपदेश में एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय प्राणी हैं। एकेन्द्रिय में एक शरीर में निगोद में अनन्त जीव। प्रत्येक शरीर में एक शरीर में एक जीव, वे सब हैं। उन सब जीवों को न मारने का विकल्प अथवा उन्हें सुख देने का विकल्प, ऐसा अनुकम्पा का भाव श्रावक को-समकिती को उसकी भूमिका में आये बिना नहीं रहता। समझ में आया?

अर्थात् कि **जिनेन्द्र भगवान के उपदेश से करुणा के पूरित... भी...** करुणा। अरे! मुझसे किसी को दुःख न हो। समझ में आया? श्रीमद् तो एक बार लिखते हैं, अरे! कोई ऐसे हरितकाय काटता हो, हमें करुणा आती है। हरितकाय, हों! लीलोतरी कहते हैं न? हरितकाय। अरे! अनन्त आत्मा। एक शरीर में अनन्त आत्मा। अभी तक छह महीने आठ समय में जो ६०८ जीव मुक्ति को प्राप्त हुए, छह महीने आठ समय में ६०८ सिद्धपद को प्राप्त हुए, ऐसे अनन्त पुद्गल परावर्तन में जितने सिद्ध हुए, उनकी अपेक्षा एक निगोद के एक शरीर में अनन्त गुने जीव हैं। समझ में आया?

अभी तक अनन्त... अनन्त... अनन्त... पुद्गल परावर्तन (हुए)। एक पुद्गल परावर्तन के अनन्तवें भाग में अनन्त चौबीसी होती है। एक चौबीसी में दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम होता है, एक सागरोपम में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम जाते हैं। एक पल्योपम के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष होते हैं। आहाहा! समझ में आया? एक पल्य का असंख्यवाँ भाग काल का माप असंख्य भाग में असंख्यात अरब वर्ष जाते हैं। असंख्यात

चौबीस नहीं, हों! और ऐसे एक पल्योपम, उसके दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम के एक सागर का माप काल का है। ऐसे दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का एक चौबीसी का काल है। चौबीस तीर्थंकर दस कोड़ाकोड़ी में.... कोड़ाकोड़ी में होते हैं। समझ में आया?

कभी विचार किया है? आहाहा! अरे! कहाँ कितना काल गया? और उस काल में निगोद के जीव एक शरीर में, एक शरीर के अनन्तवें भाग में, यह सिद्ध अभी तक अनन्त पुद्गल परावर्तन में सिद्ध परमात्मा होते आये हैं, उनसे एक टुकड़ा लील फूग— काई का, आलू का, शकरकन्द का, कन्दमूल का एक टुकड़ा ले, राई जितना टुकड़ा, उसमें असंख्य तो औदारिक शरीर, उनका एक शरीर लो तो अभी तक सिद्ध हुए, उनसे अनन्त गुने जीव। समझ में आया? ऐसे प्रत्येक एकेन्द्रिय के असंख्य। ऐसे दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय के असंख्य जीव। कहते हैं कि **'जिनोपदेशेन'** वीतराग त्रिलोकनाथ की वाणी में इन जीवों की संख्या उनके ज्ञान में आयी और ऐसा है। ऐसा जिसने उपदेश सुना है। **'कारुण्यामृतपूरिते'** समझ में आया? करुणारूपी अमृत से जिसका चित्त पूरित है। अरे! किसी जीव को एक रोम खेंचने पर दुःख होता है। उसे किसी जीव को मार डालना—एकेन्द्रिय हो या दोइन्द्रिय या तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय।

'कारुण्यामृतपूरिते चित्ते' जिसका चित्त है। धर्मी जीव का कारुण्य पूरित दया का चित्त होता है। जिसमें जीवदया नास्ति है, ऐसी जिसे अन्तःकरण में भानसहित की दया का भाव नहीं है **'तेषां धर्मः कुतो भवेत्'** उसे धर्म कहाँ से होगा? बहुत बात चली गयी है, हों! सेठ! बहुत ऊँची बात चली गयी। तुम्हारा दिन वहाँ प्रवृत्ति करने में जाता है न। आज दोपहर में लड़कियों का प्रदर्शन ऐसा था कि ऐसा...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : देखने का था। ऐसी महिलाएँ, ऐसी बहू-लड़कियाँ। उसमें धीरुभाई की लड़की ने तो गजब किया। हरिश्चन्द्र। आहाहा! हरिषेण, हरिषेण। दिखाव। रात्रि में तो न आ सके परन्तु दिन में तो... ऐसा वैराग्य, वैराग्य। आँख में से आँसू बहते जाएँ। हरिश्चन्द्र ऐसा कहते हैं कि हे माता! भगवान का रथ न निकले और पहले दूसरे का निकले? माता! भगवान का रथ निकलेगा, हों! ... और वैराग्य से ऐसे... समझ में आया? अनित्य की भावना आयेगी न। आता है न अन्तिम, कहा नहीं उसमें? माता!

चक्रवर्ती पद तो लिया... यह चक्रवर्ती पद लिया परन्तु वहाँ पर्वत में चक्रवर्ती के कितने ही नाम लिखे हुए हैं अनन्त में, उसमें जो चक्रवर्ती होता है, वह पूर्व का नाम मिटाकर नाम लिखता है। आहाहा! जब वह चक्रवर्ती होगा। विद्यमान मनुष्यदेह, सोलह हजार देव, ऐसे राजा बत्तीस हजार चंवर ढोले, छियानवें हजार पद्मिनी जैसी स्त्रियाँ और जब साधकर आया होगा, तब पर्वत पर लिखता है कि मैं एक... भरत चक्रवर्ती का आता है न, भाई! नवनीतभाई! भरत चक्रवर्ती का। भरतेष वैभव शास्त्र में आता है।

जब वह छह खण्ड साधकर आता है और ऐसा अन्तिम (वृषभाद्रि) पर्वत का नाम देखता है कि इसमें नाम कहाँ लिखूँ? कहाँ लिखूँ? इसमें खाली नहीं है। ओहो! धिक्कार है चक्रवर्ती राज को। स्वयं कहता है, हों! अरेरे! यह छह खण्ड का राज, यह छियानवें हजार स्त्रियाँ, अरे! यह राज ऐसा ही पूर्व में था। यह राज पालकर जब चक्रवर्ती लिखता होगा, उसे ऐसा होगा कि मेरा यह नाम कोई भविष्य में मिटायेगा। जो नाम लिखा हुआ, खाली जगह न मिले, ऐसे मिटाता है और वहाँ वैराग्य-वैराग्य (हो जाता है)। अरेरे! चक्रवर्ती की यह ऋद्धि! अनन्त बार जगत के जीव चक्रवर्ती पद को जो जीव प्राप्त हुए, प्राप्त हुए वे, सब प्राप्त, उन जीवों के नाम अब मिट जाते हैं। शरीर तो गये और उनके लिखे हुए नाम मिटते हैं। ओहो! संसार अनित्य! यह संसार की अनित्यता! आहाहा! मुझे भी एक इस पुण्य के कारण से यह एक चक्रवर्ती पद आया है। मुझे यह दूसरे का नाम मिटाकर मैं एक भरत चक्रवर्ती आदिनाथ का पुत्र (हूँ), ऐसा लिखता है। शोभालालभाई! मणिरत्न से (लिखता है)। मणिरत्न होता है न। और मैं चरमशरीरी हूँ, हों! ऐसा लिखता है। मैं चरमशरीरी—यह देह मुझे अन्तिम है। मुझे इस देह से ही केवलज्ञान प्राप्त करके मुक्ति है। परन्तु इस पद का पुण्य इस नाम को मिटाना चाहता है और मेरा नाम लिखाता है। आहाहा! सेठ!

ऐसे-ऐसे अनन्त चक्रवर्ती हुए। सबके अनन्त नाम कहाँ वहाँ रहते थे? पर्वत छोटा, उसमें असंख्य नाम भी नहीं रहते। संख्यात रहते हैं। पूर्व के सब उस समय के। एक हजार देव सेवा करते हैं। घोड़े पर आये हों। एक हाथ में तलवार। उस तलवार की एक हजार देव सेवा करते हों। हाथ में तलवार हों! जो तलवार ऐसी होती है (कि) हीरे का स्तम्भ हो तो ककड़ी काटे, वैसे एकदम काट डालती है। काकड़ी समझते हो?

ककड़ी। ऐसी तो वह तलवार होती है, जिसकी हजार देव सेवा करते हैं। वह तलवार ऐसे लेकर निकले राजा, जब छह खण्ड को साधकर... आहाहा! उस पूर्ण राज पद को पाकर भी यह लिखते समय समकिती है। भरत समकिती है, आत्मज्ञान है। समझ में आया? ओहो! संसार। इस श्मशान में शरीर तो चक्रवर्ती के गये परन्तु उनके नाम मिट जाते हैं। नाम निशान भी नहीं रहता। ओहो संसार! धिक्कार, संसार अनित्य है। ताराचन्दजी! ऐसे चक्रवर्ती को भी उस समय ज्ञानी को ऐसा वैराग्य हो जाता है। आहाहा! लोटे श्मशान में जिनके शरीर, जिनके लिखे लेख अब यहाँ रहते नहीं। लिखे लेख रहते नहीं। अरे! यह संसार। नित्यानन्द प्रभु आत्मा की शरण बिना कहीं शरण नहीं है। उसे यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि अरे! आत्मा! भगवान ने अनन्त जीवों की संख्या बतायी है, हों! उस जीव की दया जिसके हृदय में अमृत नहीं, वह प्राणी क्या धर्म करे? उसे क्या धर्म होगा? ऐसा कहकर यहाँ ३७ में कहा।

बाद में कहते हैं।

गाथा ३८

मूलं धर्मतरोराद्या व्रतानां धाम संपदाम्।
गुणानां निधिरित्यादिया कार्या विवेकिभिः।।३८।।

अर्थ : धर्मरूपी वृक्ष की जड़ तथा समस्त व्रतों में मुख्य और सर्व संपदाओं का स्थान तथा गुणों का खजाना यह दया है, इसलिए विवेकी मनुष्यों को यह दया अवश्य करनी चाहिए॥३८॥

गाथा - ३८ पर प्रवचन

मूलं धर्मतरोराद्या व्रतानां धाम संपदाम्।
गुणानां निधिरित्यादिया कार्या विवेकिभिः।।३८।।

क्या कहते हैं? **धर्मरूपी वृक्ष की जड़...** यह धर्म (अर्थात्) व्यवहार व्रत

आदि। भाई! इसकी बात चलती है, हों! भगवान आत्मा अखण्डानन्द ज्ञायकमूर्ति सम्यग्दर्शन का मूल तो यह द्रव्यस्वभाव है। इस सम्यक्पूर्वक की बात चलती है। आहाहा! जो आत्मा ज्ञान चिदानन्द आनन्द का कन्द, जिसके स्वभाव में अतीन्द्रिय आनन्द रस झरता है। जिसके स्वभाव में अतीन्द्रिय अमृत का रस झरता है। पर्वत में से अमृत झरे, वैसे आत्मा के अन्तर में एकाग्र होने पर वह तो अतीन्द्रिय... अतीन्द्रिय आनन्द का अकेले अमृत का रस है। ऐसा सम्यग्दृष्टि को भान हुआ है और तदुपरान्त जब उसे स्वरूप के अंश की स्थिरता का भाग पंचम गुणस्थान के योग्य हुआ है, उसे जब यह बारह व्रत का विकल्प आवे, कहते हैं कि उसमें धर्म अर्थात् व्यवहार व्रत, उसका मूल जैसे वृक्ष की जड़ है, वैसे यह दया जड़ है।

अहिंसा—किसी प्राणी को दु:ख न हो। भाव की बात है, हों! दु:ख दे सकता है, यह मान्यता मिथ्या है। यहाँ तो उनकी अनुकम्पा, सम्यग्दर्शन होने पर अनन्तानुबन्धी का नाश हुआ है, इसलिए अनुकम्पा अपने आत्मा की दया है और दूसरे जीव की दया है। उसके हृदय में सहज ऐसा भाव उठता है। जिससे आचार्य जरा कहते हैं, इस धर्मरूपी वृक्ष की जड़ **समस्त व्रतों में मुख्य है।** कहो, समझ में आया? सभी व्रतों में मुख्य यह दया—अहिंसा है। सर्व सम्पदाओं का स्थान है। एक इन्द्र का पद मिले, उसका स्थान भी यह अहिंसा का भाव है। देखो! यहाँ भाई ने स्पष्टीकरण तो किया है। पुण्य परिणाम है। ऐसे पुण्य परिणाम समकिती को हुए बिना नहीं रहते। अपने ऐसा एक श्लोक है। हमारे हीराजी महाराज कहते थे। वह यह बनारसीदास में है। उन्हें कहाँ से मिला होगा, कौन जाने? परन्तु इसमें—बनारसीदास में यह दया की व्याख्या (आती है)। बनारसीदास हो गये न? उन्होंने भी एक दया का अधिकार लिया है। समझे न? श्लोक है अवश्य?

अहिंसा का अधिकार—ऐसा करके उन्होंने व्याख्या की है। हमारे हीराजी महाराज सम्प्रदाय के गुरु थे, वह यह बहुत बोलते थे। वह तो उस मूर्ति में हिंसा होती है न फूल की, इस अपेक्षा से कहते थे कि जहाँ दया नहीं और जहाँ हिंसा हो, वहाँ धर्म नहीं है। परन्तु यहाँ बनारसीदास तो सम्यग्दर्शन की भूमिका में अहिंसा के व्यवहार परिणाम कैसे होते हैं, यह बनारसीदास बताते हैं। 'सुकृत की खान इन्द्रपुरी की निशैनी जान।' आया न? खजाना आया न? भाई, देखो! 'सुकृत की खान इन्द्रपुरी की निशैनी जान, पाप रज

खण्डन को पौनराशि खिये, भव दुःख पावक वुझायवे को मेघमाला, कमला मिलायवे को दूती ज्यो विशेखये, मुगतिवधू सों प्रीत पालवे को आलीसम ... किवार दिढ ... आगल सो देखिये, ऐसी दया कीजे चित्त तिहूँ लोक प्राणी हित; (और करतूत काहू, लेखे में न लेखिये।)' व्यवहार अहिंसा की व्याख्या करते हैं, हों! अहिंसा स्वभाव तो दृष्टि में प्रगट हुआ है। उसे व्यवहार दया के भाव कैसे होते हैं? कि 'सुकृत की खान'। सुकृत की खान—शुभभाव, यह दया का है, वह सब शुभ की-पुण्य की खान है।

'इन्द्रपुरी की निशानी...' ऐसे सुकृत के पालनेवाले सम्यग्दृष्टिपूर्वक दया के पालनेवाले इन्द्रपद को प्राप्त करते हैं। 'इन्द्रपुरी की निशानी' समझ में आया? वे अकेले से भाई ... थे, दूसरे की दया पालना, ऐसा है। भाई! यह दूसरे की दया की बात नहीं है। पाल नहीं सकता, (यहाँ) कहाँ प्रश्न है। यहाँ तो अपने में... पोतामां समझे? स्वयं। राग की मन्दता का... सम्यग्दर्शनपूर्वक दया का भाव आता है, वह 'इन्द्रपुरी की निशानी' वह इन्द्रपद में अवतरित होगा, जिसमें करोड़ों अप्सराएँ (होंगी)। वह राग पुण्य का भाग है, धर्म की भूमिका में, इसलिए उसमें इन्द्रपद आया न? देखो। **सर्व सम्पदाओं का स्थान।**

पद्मनन्दि महाराज जंगल में बसनेवाले मुनि हैं। वे कहते हैं कि सर्व सम्पदाओं का स्थान है। समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं। 'इन्द्रपुरी की निशैनी जान, पाप रज खण्डवे को...' देखो! पाप रज, हों! अशुभभावरूपी पाप के कर्म बाँधे हुए, उन्हें नाश करने का यह अहिंसा का परिणाम, वह मुख्य वस्तु है। 'पौन राखी पेखीये' रज—बहुत धूल पड़ी हो न? पवन निकले पवन। और पवन जैसे धूल को उड़ा देती है। आता है न मारवाड में, क्या कहलाता है तुम्हारे? बीकानेर न। आँधी आती है। बहुत रज का ढ़ेर होता है और पवन निकले तो उड़ा देती है। उसी प्रकार 'पाप रज खण्डन को पौन राशी की' पवन का ढ़ेर यह दया है।

'भव दुःख पावक बुझायेवे को मेघमाला।' भव दुःख को टालने के लिये मेघ की माला है। माला क्यों कही? यह पानी बरसता है न? बिन्दु ऐसी पड़ती है न माला की भाँति! वर्षा। एक साथ मूसलाधार जैसा नहीं। ऐसे ऊपर से गिरती है। पवन आवे न अन्दर, इसलिए ऐसी धारा आवे बरसात की। मेघमाला। वर्षा की माला होवे मानो दया का भाव।

मुमुक्षु : बहुत बरसात।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बहुत बरसात।

'कमला मिलायवे को दूती' यह लक्ष्मी प्राप्त करने की यह दासी है। शोभालालभाई! क्या कहते हैं यह? कमला अर्थात् लक्ष्मी। यह धूल-धूल। पाँच-पचास लाख या करोड़। यह 'कमला मिलायवे को दूती' दूती। बीच में दासी है। कमला (अर्थात्) लक्ष्मी।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! दुनिया उसे कमला मानती है न। वह कमल है। मैल है। परन्तु ऐसा माने कि आहा! लक्ष्मी मिली। ऐसे लक्ष्मी के पति सुखिया कहलावे, घर में तो ऐसे मोटरें घुमें। लाख-लाख की मोटरें। ऐई! अमरचन्दभाई! एक लाख और दस-दस हजार की मोटरें जिनके घर में चार-चार। ३०-४० मोटरें। अब वह निवृत्त कैसे हो? उसका पिता कहता होगा। समझ में आया?

कहते हैं कि 'कमला मिलायवेको...' धर्मी जीव को लक्ष्मी सामने आती है। अपने एक पद आया था। एक पद उस भक्ति में कहीं आया था। भगवान! आपकी भक्ति करे। ओहो! लक्ष्मी तो आज्ञा माँगती आयेगी। आज्ञा माँगती आयेगी। कितना कहाँ कैसे चाहिए? आपकी इच्छा क्या है? आपकी भक्ति करनेवाले तीन लोक के नाथ परमात्मा जहाँ पूर्ण निर्ग्रन्थ निर्लेप आत्मतत्त्व है, ऐसी दृष्टि होकर आत्मा की भक्ति वीतराग की जो करता है, भगवान! उसका तो आयुष्य... कहीं लाईन है, हों! यह कहीं आ अवश्य गया है। दान में होगा? दान में है कहीं। सब कहीं याद रहता है? आज्ञा माँगती हुई लक्ष्मी आयेगी। समझ में आया? यह कहीं है, प्राय: दान में है। नहीं? और वह कहा है न दान में, भाई! वहाँ? कि लक्ष्मी खर्चने से कम नहीं होगी। ऐसा पाठ दान में है। पुण्य समाप्त होने पर बिना खर्च किये समाप्त हो जाएगी। समझ में आया? यह दान में कहीं है, हों! दान में है न कहीं? दान में कौन सा अधिकार है? थोड़ा किसी को याद रखना चाहिए न कुछ? दान का अधिकार है, वहाँ है। ३८। पृष्ठ १२८ और ३८ गाथा। ३८ गाथा है।

पुण्यक्षयात्क्षयमुपैति न दीयमाना
लक्ष्मीरत: कुरुत संततपात्रदानम्।

कूपे न पश्यत जलं गृहिणः समन्ता-
दाकृष्यमाणमपि वर्धत एव नित्यम्।।३८।।

भगवान आचार्य जंगल में रहनेवाले सन्त आत्मध्यान और ज्ञान में छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले। वे भी एकबार दान की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि

कूपे न पश्यत जलं गृहिणः समन्ता-
दाकृष्यमाणमपि वर्धत एव नित्यम्।।
कूपे न पश्यत जलं गृहिणः समन्ता-

हे गृहस्थो! कुएँ से सदा चारों तरफ से निकला हुआ जल जिस प्रकार निरन्तर बढ़ता ही रहता है। है ? घटता नहीं। **उसी प्रकार संयमी पात्रों के दान में भेंट की हुई लक्ष्मी सदा बढ़ती जाती है। घटती नहीं। किन्तु पुण्य क्षय होने पर वह घटती है।** तेरा पुण्य क्षय हो जाएगा। वह नहीं खर्च करे पैसा क्षय हो जाएगा। और तेरा पुण्य होगा तो पैसा खर्च करने से कम नहीं होगा, बढ़ता ही जाएगा। जैसे कुऐं में से पानी निकालते हैं। एक कुआँ है न यहाँ अपने, कैसा ? माणेचन्दभाई!

मुमुक्षु : जनडा।

पूज्य गुरुदेवश्री : जनडा। जनडा का एक कुआँ है। बारह कोस। बारह कोस पानी। अठारह कोस और लो। अठारह कोस चलता है। दो-दो बैल। अठारह कोस चारों ओर पानी निकलता है। कम नहीं होता। जनडा यहाँ है। माणिकचन्दभाई के गाँव के पास है। अठारह कोस का पानी। समझ में आया ?

वह कुआँ ऐसा था कि किसी ने बहुत गहरा खोदा परन्तु एक चार-आठ अंगुल का पत्थर अन्दर आड़े रह गया था। पानी नहीं निकले। इसलिए फिर छोड़ दिया। लोग कायर हो गये, उसमें कोई एक बारात आयी, बारात। वह बारात आयी, जान समझते हो ? बारात। बारात आयी थी वहाँ सवेरे जल्दी निकले होंगे और प्यास लगी। अन्धेरा, भाई! इसमें पानी है, पानी निकालो। पानी हाथ नहीं आवे पानी। पानी था ही नहीं। परन्तु एक व्यक्ति उलझा डालो न पत्थर, ऊपर का एक पचास मण का था। डालो इसके अन्दर पानी है या नहीं खबर पड़े। वहाँ वह... तल था जो दल, वह (पत्थर) पड़ा और

फूट गया। अठारह-अठारह कोस बहे और पानी कम नहीं होता। यह हरजीवनभाई ने दृष्टान्त दिया था। ऐई! कहाँ गये तुम्हारे पिता क्यों नहीं आये? क्या है? यह दृष्टान्त हरजीवनभाई ने दिया था। भाई! वह उपदेश आवे न, तो कहे, यह तो जनडा का कुआं फटा है। यह हमें नहीं गुरु ने दिया और यह नहीं पृष्ठ। ऐसे करके बेचारे कहते थे। यह सब बात कहाँ से निकालते हो? यह तो कहे, एक तल था न, उसमें पत्थर डाला और पानी फटे ऐसा फटा है। ऐसा बेचारा कहता था हरजीवन।

यहाँ कहते हैं कि जहाँ अन्दर का पानी फटा। वह तड थोड़ा ही था, हों! एक विकल्प और आत्मा की एकताबुद्धि का तड मात्र। समझ में आया? राग को मन्द करते.. करते.. करते... आया हुआ परन्तु वह कुआँ फटा हुआ नहीं। परन्तु जहाँ अन्दर राग और स्वभाव की एकता टूटी, तल में तलिया में चैतन्य का अनन्त पानी भरा है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, आनन्द। एक विकल्प की एकता तोड़ने से फब्बारा प्रस्फुटित होता है। ऐसा भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, दर्शन का कुआँ, पाताल कुआँ है। पाताल कुआँ समझ में आता है? वह पाताल कुआँ नहीं होता? महा गहरा कुआँ होता है। जिसमें से अन्दर से पानी चाहे जितना निकला ही करे। उसी प्रकार यह अठारह कोस का पानी। थोड़ा बाकी था परन्तु अठारह कोस का पानी निकला।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, दान देते-देते तेरा पुण्य होगा तो जैसे कुएँ में नया पानी आता है, वैसे (लक्ष्मी) आया ही करेगी। परन्तु यदि लक्ष्मी को इस प्रकार से दान का उपयोग नहीं करे तो पुण्य का क्षय होगा तो लक्ष्मी होगी, वह चली जाएगी। आचार्य ने बहुत दृष्टान्त देकर राग की मन्दता के लिये लोगों को अनुकम्पाबुद्धि से जरा खड़े किये हैं। परन्तु बैल हो उसके पैर में—टाँग में जोर न हो उसे कहे, लकड़ियाँ डालने से वह बैल ऊँचा नहीं होता। लकड़ियाँ समझे न? टेका। जिसके पैर में कस नहीं होता, घास खाने की शक्ति। घास होवे तब तो पैर में जोर हो। लकड़ियाँ डालकर ऊँचा करे परन्तु वह नहीं होता। हमने नजरों से देखा है (संवत्) १९८१ में, गढडा में। जरा वर्षा, बहुत दुष्काल था। हम वहाँ उतरे थे। व्याख्यान पूरा हो तो ... ऊँचा करे। वह आगे जहाँ-तहाँ पड़े नीचे। क्योंकि पैर में कस नहीं होता। इसी प्रकार जिसे अन्दर में योग्यता की लायकात

में कस नहीं होता, उसे उपदेश की लकड़ियाँ काम नहीं करतीं। चाहे जितनी उपदेश की लकड़ियाँ अन्दर डाले तो फू होकर गिरे उसके ऊपर। कहो, समझ में आया?

यहाँ आचार्य महाराज कहते हैं... अपने यहाँ था बनारसीदास का। कहो, समझ में आया? 'सुगति वधु सो प्रीत...' इस सुगतिरूपी स्त्री की प्रीति बँधानेवाला अहिंसा भाव है। समझ में आया? सुगति तो उसके कलेजे में है, उसके कपाल में है। कहते हैं कि जिसे आत्मा के भानसहित अहिंसा का भाव प्रगट हुआ, 'सुगति वधु सो प्रीत' वधु अर्थात् स्त्री। सुगतिरूपी स्त्री तो उसके कपाल में है, मिलेगी। 'पालवे को आलि सम कुगति के द्वार... देखिये।' दुर्गति में जाने के लिये अहिंसा, वह अवरोधक है। आगळियो समझ में आता है? दरवाजे के आगे लकड़ी का रखते हैं। वह अवरोधक है अहिंसा भाव, दया भाव, व्यवहार से अमृत भाव है। 'ऐसी दया कीजै... तिहुं लोक प्राणी हित और कर्तृत्व कांई लेखे मन लेखिये।' विशेष कहते हैं।

'अगनी में जैसे अरविन्द न विलोकियत...' इस पर जोर देते थे। जैसे अग्नि में अरविन्द अर्थात् कमल नहीं उगता। अग्नि में कमल उगता होगा? 'सुरत मत जैसे ...' सुर—सूर्य अस्त हो जाए, तब कहीं दिन रहता होगा? सूर्य अस्त होने के बाद दिन नहीं रहता। 'सांप के बदन जैसे अमृत न उपजत' सर्प के मुख में कभी अमृत, कभी उसके खजाना नहीं होता। वहाँ तो उसकी दाढ़ में जहर होता है। सर्प की दाढ़ में जहर होता। 'कालकूट खाई जैसे जीवन न जानिये।' कालकूट जहर खाकर जीवित रहे, ऐसा नहीं हो सकता। 'कलह करत नहीं पाईये सुजस जैसे...' क्लेशकारी प्रवृत्ति और सुजस प्राप्त करना है। बहुत अच्छा, ऐसा यश मिलता होगा? प्रकृति तीक्ष्ण रागी, क्रोधी, मान, माया, क्लेशकारी, चैन नहीं। या झगड़ और या झगडालु लाओ। समझ में आया? या मेरे साथ क्लेश करे, नहीं तो क्लेश करनेवाला ला। परन्तु हम क्लेश बिना नहीं रह सकते। सेठ! ऐसी प्रवृत्ति पड़ी हो न कि मैं क्लेश नहीं करूँ तो लाओ क्लेश करनेवाला। मैं तो नहीं करूँ, तो दूसरा लाओ। परन्तु हमारे साथ सिर फोड़े, ऐसा क्लेश करनेवाला लाओ। क्लेश नहीं तो क्लेशवाले को लाओ। ऐसा कहते हैं न हमारे काठियावाड़ में। तुम्हारी भाषा होगी कुछ। हिन्दी कुछ होगी।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह तू लड़ नहीं तो लड़नेवाले को ला। हमारी काठियावाड़ी भाषा में (ऐसा कहा जाता है)। समझ में आया? ऐसे कलह करनेवाले और वापस दुनिया में यश प्राप्त करना है। बनेगा?

'बाधत... रोग नाश न बघानिये...' देखो! रस रोग होता है न? एक आम खाते हैं न। क्या कहा जाता है, उसे-रोग को? आम का रोग नहीं होता? आम-आम। उसमें से रोग होता है। आम नहीं खायेगा। आम खायेगा तो रोग होगा, ऐसा कहते हैं। 'प्राणी वध मांही तैसे धर्म की निशानी नहीं, यहीं तो बनारसी विवेक मन आणिये।' ऐसा कहते हैं। समझे न? बनारसीदास कहते हैं, ३५० वर्ष पहले। यह हमारे सम्प्रदाय में कहा जाता था।

इसी प्रकार यहाँ अहिंसा दया वह तो इन्द्र पद की निशानी है। समझ में आया? और खजाना है। यहाँ लिखते हैं, देखो! **गुणों का खजाना है।** गुणों का खजाना राग मन्द में बहुत राग मन्द दया का जिसके हृदय में है, उसे बहुत कोमलता आदि भाव हृदय में होते हैं। **इसलिए विवेकी मनुष्यों को...** देखो! विवेक शब्द पड़ा है न! यहाँ भी विवेक आया। **यह दया अवश्य करनी चाहिए।** कहो, समझ में आया?

३९ (गाथा)।

गाथा ३९

सर्वे जीवदयाधारा गुणास्तिष्ठन्ति मानुषे।
सूत्राधाराः प्रसूनानां हाराणां च सरा इव।।३९।।

अर्थ : जिस प्रकार फूलों के हारों की लड़ी सूत्र के आश्रय से रहती है उसी प्रकार मनुष्य में समस्त गुण जीवदया के आधार से रहते हैं। इसलिए समस्त गुणों की स्थिति के अभिलाषी भव्य जीवों को यह दया अवश्य करनी चाहिए॥३९॥

गाथा - ३९ पर प्रवचन

सर्वे जीवदयाधारा गुणास्तिष्ठन्ति मानुषे।
सूत्राधाराः प्रसूनानां हाराणां च सरा इव।।३९।।

जिस प्रकार फूलों के हारों की लट्टी... लट्टी होती है न फूल के हार की ? **सूत्र के आश्रय से रहती है।** सूत्र के—डोर के आश्रय से लट्टी रहती है। **जैसे मनुष्य में समस्त गुण जीवदया के आधार से रहते हैं।** दुश्मन हो तो भी उसके प्रति इसे दया आनी चाहिए। कोई भी प्राणी हो, वह भी सुख को चाहता है, अतः किसी प्राणी के प्रति उसे दुःख उत्पन्न कराने की वृत्ति नहीं होती। **दया के आधार से। इसलिए समस्त गुणों के स्थिति के अभिलाषी भव्य जीवों को यह दया जरूर करनी चाहिए।**

गाथा ४०

यतीनां श्रावकाणां च व्रतानि कलान्यपि।
एकाहिंसाप्रसिद्ध्यर्थं कथितानि जिनेश्वरैः।।४०।।

अर्थ : जितने भी मुनियों के व्रत तथा श्रावकों के व्रत सर्वज्ञदेव ने कहे हैं वे सर्व अहिंसा की प्रसिद्धि के लिए ही कहे हैं किन्तु हिंसा का पोषण करनेवाला उनमें कोई भी व्रत नहीं कहा गया है, इसलिए व्रती मनुष्यों को समस्त प्राणियों पर दया ही रखनी चाहिए।।४०।।

गाथा - ४० पर प्रवचन

यतीनां श्रावकाणां च व्रतानि कलान्यपि।
एकाहिंसाप्रसिद्ध्यर्थं कथितानि जिनेश्वरैः।।४०।।

देखो ! ओहोहो ! आचार्य करुणा करके (कहते हैं)। वन में बसे। वन में बसे हुए सन्त जगत की करुणा के लिये यह शास्त्र हो गये, रच गये। उनकी करुणा हो गयी। अरे

जीवों! इस चौरासी में भटकते कहाँ से आये? कहाँ जाओगे? भाई! तुम्हारे भविष्य का कहाँ पत्ता? तुम्हारा तम्बू कहाँ तनेगा? यहाँ से मरकर कहाँ जाओगे? वहाँ कोई गौशाला नहीं है कि वहाँ तुम्हारी सेवा करे। इसलिए कहते हैं, यति को-मुनियों को। मुनियों के व्रत है—पंच महाव्रत हैं या अट्ठाईस मूलगुण। श्रावकों के व्रत सर्वज्ञदेव ने कहे हैं। है न? **'एकाहिंसाप्रसिद्धयर्थं कथितानि' यह सर्व अहिंसा की प्रसिद्धि के लिये है।** ये चार व्रत भी अहिंसा की वाड़ है।

अहिंसा, उस अहिंसा के पालन के लिये सत्य है। अहिंसा के लिये अचौर्य, चोर कर नहीं लेना। अहिंसा के लिये ब्रह्मचर्य, अहिंसा के लिये परिग्रह रहित। बाहर का। इस अहिंसा की पुष्टि के कारण वे चार व्रत हैं। उन चार के अहिंसा नहीं, परन्तु अहिंसा की पुष्टि की वे चार वाड़ है। जिसे यह अहिंसा भगवान ने सर्व अहिंसा की प्रसिद्धि के लिये कहे हैं। **हिंसा का पोषण करनेवाला कोई भी व्रत नहीं कराता है।** जिसमें किसी भी प्राणी को दुःख हो, ऐसी बात भगवान की वाणी में व्यवहार व्रत में भी नहीं हो सकती। **इसलिए व्रती मनुष्यों को समस्त प्राणी पर दया ही रखनी चाहिए।**

गाथा ४१

जीवहिंसादिसंकल्पैरात्मन्यपि हि दूषिते।
पापं भवति जीवस्य न परं परपीडनात्।।४१।।

अर्थ : केवल अन्य प्राणियों को पीड़ा देने से ही पाप की उत्पत्ति नहीं होती कि 'उस जीव को मारुँगा अथवा वह जीव मर जाये तो अच्छा है' इत्यादि जीव हिंसा के संकल्पों से जिस समय आत्मा मलिन होता है, उस समय भी पाप की उत्पत्ति होती है॥४१॥

गाथा - ४१ पर प्रवचन

जीवहिंसादिसंकल्पैरात्मन्यपि हि दूषिते।
पापं भवति जीवस्य न परं परपीडनात्।।४१।।

केवल अन्य प्राणियों को पीड़ा देने से ही पाप की उत्पत्ति नहीं होती। लेकिन उस जीव को मारूँगा अथवा जीव मर जावे तो अच्छा हो। इत्यादि जीव हिंसा के संकल्पों से जिस समय आत्मा मलिन होता है, उस समय पाप की उत्पत्ति होती है। परिणाम संकल्प किया, वहाँ पाप की उत्पत्ति होती है। मरो, न मरो उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। दूसरा प्राणी जीवे या न जीवे। उसे ऐसे दु:ख दूँ, उसे ऐसे मारूँ, यह प्रतिकूल है तो उड़ा दूँ – ऐसा संकल्प, दूसरों को दु:ख हो या न हो परन्तु तेरे आत्मा को तो संकल्प से हिंसा हो गयी है। इसलिए ऐसे संकल्प (करना नहीं)।

मुमुक्षु : ... इरादा हो,...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। इरादा हो। यह तो है। खून हुआ हो परन्तु इरादा क्या है, ऐसा पूछते हैं। मार डाला, ऐसा नहीं पूछते। बचाने का हो, भाई मैं तो मेरा बचाव करने गया था। मुझे मारता था। मैंने लकड़ी ऐसे की तो उसके पेट में कुछ गाँठ (थी), उसे लगी और वह मर गया। मेरा मारने का भाव नहीं था। अत: इरादा मारने का न हो तो उसे फाँसी नहीं देते। ऐसा होगा या नहीं? यह वकील है। इसमें तो खबर पड़ती है या नहीं इसे? यह वहाँ वापस डालते हैं। परन्तु गजब भाई! नहीं, नहीं क्या यह आये बिना रहे ही नहीं ताला। यह या ऐसे आवे और या ऐसे आवे। दो ओर आवे। ऐई! कहाँ गये भाई? नटुभाई! यह सन्निपात होता है और उसको चाळा चले बिना रहता ही नहीं जरा अन्दर। कहो, समझ में आया इसमें? **'पापं भवति जीवस्य न परं परपीडनात्'** लो!

अब आचार्य महाराज बारह भावना की बात करना चाहते हैं।

गाथा ४२

द्वादशापि सदा चिन्त्या अनुप्रेक्षा महात्मभि:।
तद्भावना भवत्येव कर्मण: क्षयकारणम्।।४२।।

अर्थ : उत्तम पुरुषों को बारह भावनाओं का सदा चिंतवन करना चाहिए क्योंकि उन भावनाओं का चिंतवन, समस्त कर्मों का नाश करनेवाला होता है॥४२॥

गाथा - ४२ पर प्रवचन

द्वादशापि सदा चिन्त्या अनुप्रेक्षा महात्मभिः।
तद्भावना भवत्येव कर्मणः क्षयकारणम्।।४२।।

समझ में आया? आहाहा! उत्तम पुरुष लिये हैं। देखो! महात्मा शब्द लिया है न? सम्यग्दृष्टि जीव है, धर्म की दृष्टि हुई है। उसकी गृहस्थाश्रम में बात है। वह स्त्री, परिवार में है, तथापि उसे यहाँ महात्मा कहा है। धर्मी को महात्मा कहा है। भले राज परिवार में स्थित (हो)। महा आत्मा। अन्तरात्मा हुआ, इसलिए उसे महात्मा कहा जाता है। समझ में आया? भगवान ज्ञान और अनन्त गुण का धाम आत्मा, उसकी अन्तर अनुभव की दृष्टि हुई, पर्याय में अन्तर आत्मदशा प्रगट हुई। अब वह परमात्मा को साधने का साधक है; इसलिए अन्तर आत्मा को भी महात्मा कहा जाता है। फिर भी स्त्री हो, पुरुष हो, नारकी हो या पशु हो। चौथे गुणस्थान में भी उसे उस दशा जितना महात्मा कहा जाता है। यहाँ पाँचवें गुणस्थान की बात चलती है। समझ में आया?

'तद्भावना भवत्येव कर्मणः क्षयकारणम्' बारह भावना का शास्त्र में स्वरूप तो संवररूप से लिया है। समझ में आया? यहाँ विकल्परूप लेकर स्वभावसन्मुख की एकाग्रता है, उसमें ऐसी भावना भाते हुए विशेष रागरहित वीतरागता अन्दर प्रगट होती है, उससे कर्म का क्षय होता है, ऐसा कहने में आता है और जितना पुण्य का विकल्प होता है, उतना उसमें पाप का क्षय होता है; इसलिए कर्मक्षय का कारण इस प्रकार से कहने में आया है।

उत्तम पुरुषों को बारह भावनाओं का सदा चिन्तवन करना चाहिए। क्योंकि उन भावनाओं का चिन्तवन समस्त कर्मों का नाश (करनेवाला है)। आचार्यवर बारह भावनाओं का नाम बताते हैं।

गाथा ४३-४४

अध्रुवाशरणे चैव भव एकत्वमेव च।
अन्यत्वमशुचित्वं च तथैवास्त्रवसंवरौ।।४३।।
निर्जरा च तथा लोको बोधि दुर्लभधर्मता।
द्वादशैता अनुप्रेक्षा भाषिता जिनपुङ्गवैः।।४४।।

अर्थ : अध्रुव, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ ११ धर्म १२ ये बारह अनुप्रेक्षा जिनेन्द्रदेव ने कही है॥४३-४४॥

गाथा - ४३-४४ पर प्रवचन

अध्रुवाशरणे चैव भव एकत्वमेव च।
अन्यत्वमशुचित्वं च तथैवास्त्रवसंवरौ।।४३।।
निर्जरा च तथा लोको बोधि दुर्लभधर्मता।
द्वादशैता अनुप्रेक्षा भाषिता जिनपुङ्गवैः।।४४।।

वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा ने '**जिनपुङ्गवैः**' जिन में जो महापुरुष हैं, ऐसे वीतरागदेव ने बारह भावना भाने की बात की है। समझ में आया? मुनि चक्रवर्ती होवे तो भी मुनि हो, तब बारह भावना भावे। पहले बारह भावना गृहस्थाश्रम में भावे। छियानवें हजार स्त्रियाँ हों। एक बार शान्तिनाथ भगवान छियानवें हजार (स्त्रियों के) वृन्द में बैठे थे। अप्सराएँ जैसी रानियाँ। उसमें से उन्हें भावना करते हुए वैराग्य हुआ। इसलिए रानियों को रुदन हुआ। अरे.. अरे! स्त्रियों! मैं कहीं तुम्हारे लिये नहीं रहा था। समझ में आया? मेरा आसक्ति का राग था, इसलिए मैं रहा था। वह मेरा राग अब मर गया है। इसलिए यदि तुम्हारे कारण रहा होऊँ, ऐसा तुम मानती हो तो निकाल डालो। स्त्रियों से कहते हैं। छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में बैठे एकदम भावना भाते हुए वैराग्य हो गया। ओहो! कहाँ आत्मा की वीतरागदशा और कहाँ मैं अभी पड़ा हूँ?

मैं चक्रवर्ती, मैं कामदेव, मैं तीर्थंकर। एक भव में तीन पदवियाँ। परन्तु अभी मुनिपना और चारित्रदशा मुझे नहीं है, तब तक केवलज्ञान की परमात्मदशा मुझे प्रगट नहीं होगी। इस प्रकार उन्हें कहते हैं, तुम ऐसा मानती हो कि तुम मुझे ललचाती हो, इसलिए मैं रहा हूँ, तुम मुझे ललचाती हो और मधुर शब्द और अनुकूलता के लिये यहाँ रहा हूँ, ऐसा मानना नहीं। देवीलालजी! मेरी आसक्ति मुझे अन्दर रोकती थी, इसलिए तुम्हारी ओर मेरा लक्ष्य जाता था। अब मेरी आसक्ति; जैसे जीवित मनुष्य आयुष्य हो, तब तक जीया, आयुष्य गया तो मर गया। उसी प्रकार मेरा राग तुम्हारे प्रति मेरे कारण से था, वह मर गया है। समझ में आया? वह राग अब मुझे नहीं है। इसलिए चोटियाँ तोड़े या सिर फोड़ो, वह कुछ चले ऐसा नहीं है। आहाहा! ताराचन्दजी! सिर फोड़े न, यह चोटियाँ उघाड़े। आहाहा! रुको, रुक जाओ। हमारी आसक्ति हमारे कारण से है। तुम्हारे कारण से नहीं। स्वभाव में वह है नहीं। परन्तु हमारी कमजोरी के कारण से भोग की राग की वृत्ति उठती थी, वह हमारी वृत्ति गयी है। मर गया मुर्दा अब जीवित नहीं होता। समझ में आया? इसी प्रकार राग से मरे, उसे अब यह राग ऐसा आता नहीं। ठहरो... ठहरो... ठहरो... हम तो मुनिपना अंगीकार करेंगे। शोभालालभाई! ऐसी भावना गृहस्थाश्रम में चक्रवर्ती, तीर्थंकर भी भाते थे। अभी तीन ज्ञान के धनी थे, तथापि बारम्बार यह भावना भाते हुए उसमें एक यह बात (की है)। उसमें अनित्य भावना के स्वरूप का वर्णन (करते हैं)। लो!

गाथा ४५

अध्रुवाणि समस्तानि शरीरादीनि देहिनाम्।
तन्नाशे ऽपि न कर्तव्यः शोको दुष्कर्मकारणम्।।४५।।

अर्थ : प्राणियों के समस्त शरीर, धन, धान्य आदि पदार्थ विनाशीक हैं इसलिए उनके नष्ट होने पर जीवों को कुछ भी शोक नहीं करना चाहिए क्योंकि उस शोक से केवल खोटे कर्मों का बंध ही होता है॥४५॥

गाथा - ४५ पर प्रवचन

अध्रुवाणि समस्तानि शरीरादीनि देहिनाम्।
तन्नाशे ऽपि न कर्तव्यः शोको दुष्कर्मकारणम्।।४५।।

प्राणियों के समस्त शरीर धन्य धान्य सर्व पदार्थ नाशवान... नाशवान है, ऐसा धर्मी बारम्बार विचार करता है। कहो, बहियाँ फिराता है या नहीं बारम्बार? पन्ना फिरे और सोना झरे। शोभलालभाई! ऐसा कहते हैं न तुम्हारे बनिया में? कि भाई! बहियाँ फिराते रहना, उसमें से सोना झरेगा। धूल में नहीं अब वह तो। वह तो पैसे आनेवाले होंगे, वे आयेंगे। उसमें पैसे पड़े होंगे पन्ने में?

यहाँ कहते है कि धर्मी जीव को ऐसी भावना बारम्बार (होती है)। ओहो! यह शरीर सुन्दर दिखाव भी एकबार ढ़ेर परमाणु की राख होगी। शरीर अनित्य है। भगवान आत्मा मैं नित्य हूँ। यह शरीर तो क्षणिक है। सुन्दर दिखे या कुबड़ा दिखाई दे, वह नाशवान है। ऐसा बारम्बार (भाता है)। शरीर आदि, हों! धन, लक्ष्मी मिली, वह तो नाशवान है। ऐसा धर्मी बारम्बार विचार करता है। कब चला जाएगा, (इसकी खबर नहीं)। धान्य। बारह महीने का संग्रह करता है या नहीं? कि अभी बारह महीने निश्चिन्तता से रखा। परन्तु वह ... सुलगेगा-जलेगा कब? नाशवान है।

इसलिए उनके नष्ट होने पर जीवों को कुछ भी शोक नहीं करना। क्योंकि उस शोक से केवल खोटे कर्म को बँधता ही है। अनित्य भावना। कहा न इस चक्रवर्ती को। आहाहा! यह संसार। जब नाम ऐसे उत्साह से ऐसा लिखा होगा। इन्द्र जैसा चक्रवर्ती खड़ा हो। देव सिर पर फूल बरसाते, हों! उस समय नाम लिखता है, नाम लिखे कि मैं एक चक्रवर्ती, छह खण्ड का साधनेवाला। मैंने मेरे बाहुबल से छह खण्ड को साधा। लिखे तो ऊपर से फूल बरसते हैं। मिटाने तब उनकी हाजिरी नहीं होती। नाशवान-नाशवान ऐसा बारम्बार धर्मात्मा चिन्तवन करते हैं। यह बारह भावना (आयेगी)....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)